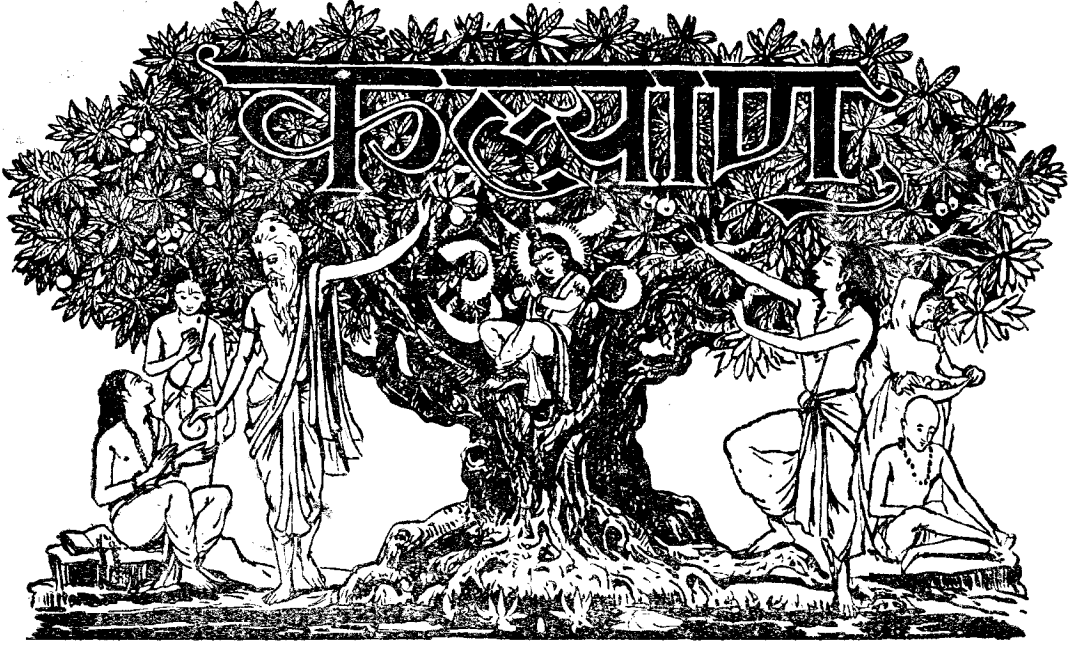


ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते ।

पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥



यस्य स्वादुफलानि भोक्तुमैभितो लालायिताः साधवः ,  
भ्राम्यन्ति ह्यनिशं विविक्तमतयः सन्तो महान्तो मुदा ।  
भक्तिज्ञानविरागयोगफलवान् सर्वार्थसिद्धिप्रदः ,  
सोऽयं प्राणिसुखावहो विजयते कल्याणकल्पद्रुमः ॥

भाग ४ }

वैशाख कृष्ण ११ संवत् १९८७

{ संख्या १०

## ब्रह्मका निवास कहाँ है ?

जो नर दुखमें दुख नहीं मानै ।

सुख सनेह अरु भय नहीं जाके कञ्चन माटी जानै ॥  
नहिं निन्दा नहिं अस्तुति जाके लोभ मोह अभिमाना ।  
हर्ष-शोकतें रहे गियारो नाहिं मान-अपमाना ॥  
आसा मनसा सकल त्यागिकै जगते रहै निरासा ।  
काम-क्रोध जेहिं परसैं नाहिंन तेहि घट ब्रह्म-निवासा ॥  
गुरु-किरपा जेहि नरपै कीन्हीं तिन यह जुगति पिछानी ।  
'नानक' लीन भयो गोविन्दमें ज्यों पानी संग पानी ॥

—गुरु नानक



**COLLECTION OF VARIOUS**  
**-> HINDUISM SCRIPTURES**  
**-> HINDU COMICS**  
**-> AYURVEDA**  
**-> MAGZINES**

**FIND ALL AT [HTTPS://DSC.GG/DHARMA](https://dsc.gg/dharma)**

**Made with**



**By**

**Avinash/Shashi**

**Icreator of  
hinduism  
server!**

**KAPWING**

## एक सन्तका अनुभव

[ कुछ दिनों पूर्व साधु-संग लाभके लिये मैं ऋषिकेश गया था। वहाँ स्वर्गाश्रममें 'श्रीनारायण स्वामीजी' के दर्शन हुए। आप अमीर घरानेमें पैदा हुए एक उच्चशिक्षित पुरुष हैं। इस समय निरन्तर श्री 'नारायण' नामका जप करते हैं, चौबीसों घण्टे मौन रहते हैं। केवल सप्ताह दो घण्टे सोते हैं। अपने पास कुछ भी संग्रह नहीं रखते। कमरमें एक डोरी बाँध रखी है, उसीके सहारे टाटके टुकड़ेका कौपीन लगाये रहते हैं। भगवान और भगवत्प्रेमकी बातें होते ही आपके नेत्रोंसे अश्रुपात होने लगते हैं। इस समय रातको आप 'विनयपत्रिका' सुना करते हैं। 'सस्तु' साहित्यवर्षक कार्यालय' अहमदाबादके प्रसिद्ध स्वामी अखण्डानन्दजी कहते थे कि उस समय आपके चेहरेपर प्रेमके जो भाव प्रकट होते हैं, वे देखनेयोग्य होते हैं। हम लोगोंके अनुरोध करनेपर आपने अपने जीवनकी कुछ बातें रातको मानसिक भजनमेंसे समय निकालकर उर्दूमें लिखनेकी कृपा की। आपने लिखकर बताया कि 'इसमें जो कुछ भी साधन लिखे गये हैं, वे सब मैं अपने जीवनमें कर चुका हूँ या कर रहा हूँ। इसमें ऐसी कोई बात नहीं लिखी गयी है जिसका मुझे स्वयं अनुभव न हो।' आपके उर्दू लेखको हिन्दीमें आपके सामने ही होशियारपुरके एडवोकेट लाला अयोध्याप्रसादजी और युलन्दशहरके पं० हरिप्रसादजीने मुझको लिखवा दिया था। हिन्दीमें लिखवाते समय स्वामीजीके चेहरेपर प्रेमभावका विकास देखकर सबको बड़ा आनन्द होता था। यह लेख पुस्तकाकार अलग भी छप रहा है, जिनको चाहिये वे अपने लिये या बाँटनेके लिये मूल्य भेजकर मँगवा सकते हैं।—सम्पादक ]

### ॐ नारायण



लनेमें जितना जल्दी कहा जा सकता है, लिखनेमें उसकी अपेक्षा बहुत अधिक समय लगता है, परन्तु श्रीमान् भगवद्भक्त श्री-जयदयालजी और श्रीमान् हनुमान-प्रसाद पोद्दार सम्पादक 'कल्याण' की प्रेरणसे थोड़ा हाल, जो इस पापी जीवने गृहस्थाश्रम और त्याग अवस्थामें भजन एवं दूसरे साधनोंको करके अनुभव किया है, लिखता हूँ। भक्तजन जो इसको पढ़ें, भूल न जायें, याद रखें और प्रेमसे अभ्यास करें। इस दासने रातके समय अपना भजन बन्द करके अमूल्य समय इसके लिखनेमें व्यय किया है।

✓ इस शरीरका चैत्र शुदी १५ ता० २० अप्रैल सन् १८८० ई०को कायस्थ माथुरकुलके अमीर-घराने

और सम्भ्रान्त-वंशमें मुरादाबादमें जन्म हुआ था, इस वंशके पूर्वज बादशाहके यहाँ किसी प्रान्तमें दीवान थे। तीव्र वैराग्य होनेपर गृहस्थ छोड़ते समय यह खयाल हुआ कि भीख कैसे माँगेंगे, बहुत शर्म मालूम होगी। दूसरी बात यह है कि गुरु मिलना चाहिये।

इसी खयालमें था कि भगवान् ने एक साधुको मेरे पास भेजा, उन्होंने कहा, 'बद्रीनारायणसे आये हैं।' उनसे मैंने बातचीत की तो कहा कि 'हमारे पास एक ऐसी जड़ी है, जिसके रोज खानेसे भूख बिल्कुल नहीं लगती। राईके दानेके बराबर रोज सुबहके वक्त जीभपर रखकर इसका रस उतारा जाय। गरम बहुत है, बद्रीनारायणमें पैदा होती है।' फिर कहा कि 'यह बात किसीसे कहना नहीं, कहोगे तो इसका फल जाता रहेगा।'।

जड़ी लेकर मैं बहुत खुश हुआ और दूसरे

रोज ही रवाना होकर हरिद्वार आया। जो सामान पास था, दे दिया और त्याग करके ऋषिकेश आ गया। सात रोजतक वह जड़ी खाता रहा, बिल्कुल भूख नहीं लगी। पर शरीर बहुत कमजोर हो गया था, बैठने-उठनेकी ताकत भी नहीं रही थी और भजनमें भी विक्षेप पड़ता था। इस कारण उसको छोड़ दिया और यह समझकर कि, भिक्षा करना साधुका धर्म है, क्षेत्रमें जाकर भिक्षा माँग लाता और गंगा-किनारे बैठकर खा लेता।

अब दूसरा खयाल यह हुआ करता था कि गुरुकी बहुत तलाश की, अबतक नहीं मिले, गुरु बिना संन्यास कैसा? इसलिये यह निश्चय किया कि इस शरीरको गंगाजीमें डालकर छोड़ देना चाहिये। इसी खयालमें था कि एक दिन रातको स्वप्नमें मानो पहाड़के ऊपर मैं खड़ा था कि उसी समय साधु-भेषमें भगवान् आये और कहा कि 'तुम्हारे गुरु बद्रीनारायण हम हैं। एक कौपीन और एक कम्बल मुझको देकर कहा कि 'नारायण' 'नारायण' कहो, परमहंस हो जाओ।' इसके बाद फिर कुछ नहीं देखा। मैं खुश होकर ऋषिकेशसे गंगोत्तरी केदारनाथ होता हुआ बद्रीनारायण पहुँचा और गुरु महाराजके दर्शन किये। फिर, स्वप्नमें आज्ञा हुई कि चारों धाम करके नर्मदा-किनारे जाकर भजन करो। गुरुमहाराजकी आज्ञानुसार चारों धाम करके नर्मदा-किनारे पहुँचा और भजन-संख्या धीरे-धीरे बढ़ाता रहा, एवं जो साधन नीचे लिखे हैं, करता रहा।

पूर्वके जीवन अथवा गृहस्थ-आश्रमके हालातसे मुझको नफरत हो गयी है, और दूसरे कारण भी इसलिये उनको लिखना मैं पसन्द नहीं करता।

१ चाहता हूँ। यही मेरा जीवन-चरित्र है और धारणा ही उपदेश है। परमहंस-भेषको आज-कल सात वर्ष दो महीने चौबीस दिन हुए हैं।

भगवान्ने श्रीमद्भागवतमें निम्नलिखित चार खम्भे धर्मके बतलाये हैं—

१, सत्य ।

२, तप ।

३, दया ।

४, दान ।

### (१) सत्य बोलनेके साधन

१—मौन धारण करना—गृहस्थके कार्यामें जो अधिक समय न मिले तो सुबहके वक्त स्नान करने-के बाद दो चार घण्टेतक तो पूजन-पाठ करनेमें मौन अवश्य रखना चाहिये।

२—कम बोलना—आजकल वृथा भाषण करनेकी बहुत रिवाज है, इसको छोड़ना। जरूरतके वक्त बात करना, या ज्ञानवर्चा करना ही तो बोलना।

३—एकान्त—सम्बन्धियों या दोस्तोंसे कम मिलना, घरमें जाकर भी अलग कमरेमें बैठना और कोई धार्मिक पुस्तक देखना या जगत्की असत्यतापर विचार करना।

४—खबर कभी नहीं देखना—दुनियाभरकी खबरें मालूम होवेसे व्यर्थ बातोंमें मनकी स्फुरणा बढ़ती है, दूसरोंकी वह खबरें सुनानेमें झूठ-सच बोलना पड़ता है। बेकार वक्त खराब होता है। धार्मिक खबर देखनेमें कभी हर्ज नहीं।

५—किसीको वचन देना तो सोचकर देना और उसे जरूर पूरा करना। जैसे आपने किसीसे कहा कि मैं शामको पाँच बजे अमुक स्थानपर मिलूँगा तो अवश्य पाँच बजेसे दो चार मिनट पहले ही वहाँ पहुँच जाना चाहिये।

६—रातको सोते वक्त यह विचार करना चाहिये कि आज सुबहसे इस समयतक मैंने कहाँ कहाँ झूठ बोला और कौन-कौनसे पाप किये। सोते वक्तकका इतिहास मस्तकमें लाकर मनको, बुरे कर्म, जो आज किये हैं, कल न करनेके लिये बहुत



समझाना, ऐसा करनेसे झूठ बोलने और बुरे कर्म करनेमें रुकावट होगी। ऐसा करनेमें चार छः दिन तो आलस्य मालूम होगा फिर अभ्यास हो जानेपर बहुत आनन्द आयेगा।

उपर्युक्त साधन करनेसे सत्य बोलनेका अभ्यास बहुत जल्दी हो जायगा।

✓ प्रत्येक पूर्णिमाको सत्यनारायणकी कथा करवानी चाहिये। कथा करवानेवालेको उपवास रखना चाहिये।

सत्य श्रीनारायणका स्वरूप है। भजन करनेवालेको सबसे पहले यह साधन करना चाहिये। सत्य बोलनेसे अन्तःकरण शुद्ध होता है। बारह वर्षतक सत्य बोलनेवालेकी वचन-सिद्धि हो जाती है। सत्य बोलनेसे बुरे कर्म होने बन्द हो जाते हैं। चिन्ता कम हो जाती है। सब कर्म नीति और शास्त्रके अनुसार होने लगते हैं। दुनियाके लोग उसकी बहुत इज्जत करते हैं, उसकी बातपर विश्वास करते हैं। व्यापारमें सत्य बोलनेसे बहुत लाभ होता है। सत्य बोलनेवालेपर भगवान् खुश होते हैं, और उसकी सहायता करते हैं। —

सत्य बोलनेसे यदि किसी अवसरपर नुकसान या तकलीफ भी हो जाय तो उसे सहन करना चाहिये। कलियुगका स्वरूप असत्य है। इसलिये आजकल झूठ अधिक फलीभूत होता दीखता है परन्तु उसका परिणाम बहुत बुरा है।

झूठसे यहाँतक बचना चाहिये कि छोटे-छोटे बच्चोंकी भी झूठी बातोंसे खुश नहीं करना चाहिये, बल्कि घरके सब लोगोंको रोज सत्य बोलनेका उपदेश करना चाहिये। मुझ पापी जीवको सत्य बोलनेसे बहुत लाभ पहुँचा है और हमेशा यह दास सत्यका सम्मान करता है।

७—‘सत्य बोलो’ ये शब्द कागजपर बड़े अक्षरोंमें लिखकर सोने, बैठने, खाने और स्नान

करनेकी जगहपर लगा देना चाहिये। नजर पड़नेपर बात याद आती रहेगी।

यह साधन बहुत अच्छा है। यदि किया जायगा तो घरके सब आदमी नौकर वगैरह सभी सत्य बोलने लगेंगे।

## (२) तप करनेके साधन

योगाभ्यास और भजन ये दो मुख्य साधन ही तप करनेके बतलाये गये हैं और सब दूसरे साधन इनके अन्दर हैं।

योगक्रिया—प्राणायाम आदि साधन बहुत अच्छे और प्राचीन हैं। महात्मा लोग सदासे करते आये हैं। मैंने यह क्रिया आजतक कभी नहीं की, इसलिये मुझको इसका कुछ भी अनुभव नहीं है और न इसका शौक है, केवल इतना जानता हूँ कि इस कलियुगके समयमें यह साधन बहुत कठिनतासे होता है और बहुतसे विघ्न पड़नेके कारण पूरा नहीं हो पाता।

भजन—यह साधन दो प्रकारसे होता है। एक मालासे, दूसरा बिना मालासे, जिसको अजपा-जाप कहते हैं।

भजन करनेका सबसे पहला साधन माला है। मनके लिये यह कोड़ा है। जबतक माला हाथमें घूमती रहेगी, भजन होता रहेगा। मालासे भजनकी संख्या भी मालूम होती रहती है। मैंने सुना है कि आमतौरपर सुबह-शामके नित्य-नियममें दस-बीस माला लोग फेर लेते हैं। यह बहुत थोड़ी संख्या है। कारण, भजनमें निम्नलिखित कई भागीदार हैं (१) गुरु, (२) माता-पिता (३) जिसके राज्यमें भजन करें और (४) जो अन्न-वस्त्र आदि देता है।

एक दिन-रातके बीसबीस घण्टेमें २१६०० श्वास मनुष्यके देहमें चलते हैं, अगर उच्छ्वास नहीं तो २१६०० नामका जप तो होना ही चाहिये।

यह संख्या दो सौ माला फेरनेमें पूरी हो जाती है और अभ्यास हो जानेपर मेरे खयालसे चार घण्टेमें दो सौ माला पूरी हो सकती है। दो घण्टे सुबह और दो घण्टे शाम या जैसा जिसको अनुकूल हो, गृहस्थमें प्रत्येक व्यक्तिको यह करना चाहिये।

दूसरा साधन यह है कि छोटी माला हर समय हाथमें रखे, जिससे चलते-फिरते भी भजन होता रहे। शरमानेकी जरूरत नहीं है। यह तो मनुष्य-मात्रका धर्म ही है। चलते-फिरते ध्यान नहीं होगा तो कुछ हर्ज नहीं, सुबह-शाम ही हो जाय तो बहुत है।

तीसरा साधन यह है कि कपड़ेकी थैली बनाकर हाथ उसके अन्दर रखे और माला हर समय फेरता रहे, यह साधन भी बहुत अच्छा है मथुरा वृन्दावनमें अधिक देखनेमें आता है।

चौथा साधन अजपा-जाप है, जो नीचे लिखे चार प्रकारसे किया जाता है। अजपा-जाप करनेवाले माला नहीं रखते हैं और उसकी जरूरत भी नहीं है। प्रकार ये हैं—

१—जिह्वासे उच्चारण नामका करे, थोड़ी आवाज भी निकले, जिससे सुमिरन वन्दन हो और साथ ही ध्यान भी लगा रहना चाहिये

२—कण्ठसे जाप हो।

३—हृदयसे जाप हो।

४—नाभिसे श्वासके साथ जाप हो।

१—जिह्वासे एक वर्ष।

२—कण्ठसे दो वर्ष।

३—हृदयसे दो वर्ष।

४—नाभिसे सात वर्ष।

इसप्रकार बारह वर्षतक भजन करनेसे मनुष्य मोक्षस्वरूप हो जाता है और उसे साक्षात्कार होता है यानी जाग्रत-अवस्थामें भगवान् सम्मुख आकर दर्शन देते हैं और सिद्धियाँ पैरोंमें लोटती फिरती हैं।

अजपा-जापमें कौन-कौन-सी बातोंका पालन और परहेज करना चाहिये—

१—भोजन एक समय और थोड़ा।

२—नींद थोड़ी।

३—एकान्तवास।

४—तकिया-गद्दा छोड़ देना चाहिये।

५—मौन चौबीस घण्टेका।

६—भजनका खजाना तिजौरीमें रखे।

कमसे इनका विस्तारपूर्वक वर्णन किया जाता है—

१—भोजन सात्त्विक होना चाहिये—चावल, दही, खटाई, तैल, ज्यादा मिर्च, मसाला, मूँगफली, गोभी वगैरह जितने वायु उत्पन्न करनेवाले पदार्थ हैं, सब छोड़ देने चाहिये। इनके खानेसे नींद अधिक आती है।

मूँगकी दाल, रोटी, आलूका साग वगैरह ये भोजन बहुत उत्तम हैं। एक वक्त भोजन करना, दालमें घी ज्यादा डालना और रातको आधसेर दूध पीना काफी है। मीठा और नमक बहुत थोड़ा खाना चाहिये। जौकी रोटी बहुत गुणदायक है।

२—नींद कम करनेका साधन यह है कि रातको दस बजेसे एक-एक घण्टे हर महीने बढ़ाना शुरू करे, यानी दस बजेसे ग्यारह बजेतक एक महीना जागे, दूसरे महीने बारह बजेतक, तीसरे महीने एक बजेतक, चौथे महीने दो बजेतक, इसी तरह रातके चार बजेतक जागनेका अभ्यास

❁ प्याज लहसुनकी बाबत इसलिये कुछ नहीं लिखा गया कि ये तो सर्वथा त्याज्य हैं ही। शास्त्रोंमें लिखा है कि प्याज खानेवालेको प्रेतयोनि मिलती है।

करे और चार बजेसे सुबहके छः बजेतक दो घण्टे सोवे। इतना सोनेसे तन्दुरुस्ती खराब नहीं होगी। अगर नहीं हो सके तो ज्यादासे ज्यादा चार घण्टे सोवे। इससे ज्यादा नहीं सोना चाहिये। महीनेका आरम्भ पूर्णिमाके दिनसे करना ठीक होगा। बीस घण्टे भजन होना चाहिये।

पहले वक्तकी नींदमें ज्यादा जोर होता है, इसलिये जिस वक्त नींद आती मालूम हो, फौरन खड़े होकर धीरे-धीरे घूमना चाहिये। साधनके आरम्भमें कुछ रोजतक ऐसा भी होता है कि जब नींदका खुमार दिमागमें घूमने लगता है तो चकराकर शरीर जमीनपर गिर पड़ता है और थोड़ी चोट भी लग जाती है पर इसका खयाल नहीं करना चाहिये। साधनको छोड़े नहीं।

३--रातके समय कमरेमें दूसरा कोई नहीं होना चाहिये। सोते हुए आदमीको देखकर आलस्य आने लगता है और भजनमें धिन्न पड़ता है।

४--तकिये-गद्देपर रातको बैठनेसे आराम मिलेगा तो नींद ज्यादा तंग करेगी, इसलिये उन या कुशाके आसनपर बैठना चाहिये। रस्सीका एक झूला डालकर उसमें एक गोल डण्डा बाँध देना चाहिये। जिस समय ज्यादा नींद आवे तो उसके सहारेसे खड़े होकर दस पन्द्रह मिनटतक नींदके खुमारको निकाल देना चाहिये। तेज रोशनी रात-भर रखनी चाहिये।

५--मौन चौबीस घण्टेका रखना चाहिये। क्योंकि जो भजन तैलधारावत् चल रहा है, बोलनेसे भजनकी डोरी टूट जायगी और विक्षेप होगा।

६--भजनके खजानेको तिजोरामें इस कारण रखना चाहिये कि उसके लूटनेको डाकू बहुत आजाते हैं। इसलिये गृहस्थको तो किसीके घरका भोजन वगैरह नहीं खाना चाहिये, किसीकी कोई चीज़ नहीं लेनी चाहिये और नेक कमाईका पैसा कमाकर खर्च करना चाहिये।

महात्माओंको, जो इस साधन और जापको करते हैं, माया बहुत दुःख देती है। दुनियाके लोग सब खजाना लूटकर ले जाते हैं और यही एक खास कारण है कि किसी प्रकारकी सिद्धि उनमें नहीं होती और न उन्हें भगवत्-प्राप्ति ही होती है। वे मायामें ही लटकते रह जाते हैं। इसलिये भजनका खजाना खर्च न करके रूखा-सूखा टुकड़ा और गंगाजल पीकर शरीरका निर्वाह करना चाहिये।

ये अजपा-जापके साधन गृहस्थोंके लिये बहुत कठिन हैं। दो सालतक तो ज़रूर तकलीफ होती है पर जैसे-जैसे भजनका प्रभाव बढ़ता जाता है नारायण-कृपा भी ज्यादा होती जाती है, फिर परमानन्दसे जीवन व्यतीत होता है।

महात्मा रामदासजीने अपने दासबोध नामक ग्रन्थमें लिखा है कि यदि मनुष्य तेरह अथवा चौदह कोटि जाप नामका करे तो भगवान् दर्शन देने हैं। दो महात्मा बड़े सिद्ध हुए हैं। इनके बचनोंपर विश्वास करना चाहिये।

अजपा-जाप करनेसे चार वर्षके अन्दर यह संख्या पूरी हो जाती है।

मुझको इसका अनुभव हो चुका है। परम दयालु प्यारे नारायणने इस दास या गुलामोंके गुलामपर कृपा करके नर्मदा-किनारे गुजरातके चान्दोद नामक स्थानमें दर्शन दिये थे। पहले छुम-छुमकी आवाज़ आयी फिर विमान आया, जिसको चार पंखोंने उड़ा रक्खा था, भगवान् उतरकर कहने लगे—‘नारायण नारायण’ इसका अर्थ यह हुआ कि नारायण आये हैं। फिर कहा कि ‘बदरिका-श्रम चलो, वहाँ जाकर भजन करो, तुम्हारी यहाँसे बदली हो गयी।’ इस साधनके करनेसे इस दासको तीन वर्ष छः मास चौबीस दिनमें भगवान्के दर्शन हुए थे।

अनन्य भक्तिके साधन

१, अजपा जाप।

२, प्रेम ।

३, सत्य बोलना ।

४, समदर्शित्व ।

५, वासनारहित होना ।

इनकी क्रममें व्याख्या

१-भजपा-जाप वह है जो चौबीसों घण्टे ध्यासके साथ होता रहे। इसका अभ्यास करते करते रोम-रोमसे 'नारायण' शब्द निकलता है। अन्यान्य साधन ऊपर लिखे जा चुके हैं।

२-प्रेमका केवल एक साधन यही है कि भगवान्‌के गुणानुवाद सुनकर रोया करे और रातको एकान्तमें बैठकर खूब रोया करे। ऐसा करनेसे दिन-प्रति-दिन प्रेम बढ़ता जायगा। भक्तिका यह एक खास अंग है। मीराबाई भी ऐसा ही करती थीं।

३-भजनके साथ सत्य बोलना निहायत जरूरी है। इसके और साधन लिखे जा चुके हैं।

४-समदर्शी होना-यह साधन बहुत कठिनतासे होता है। सारे जगत्‌को नारायणरूप जानकर हाथ जोड़कर प्रणाम इस भावको लेकर करे कि मैं नारायणको ही नमस्कार कर रहा हूँ, जीवमात्रके साथ प्रेम करे, किसीके मनको न दुखावे, किसीको दुर्वचन न कहे और न किसीसे वैरभाव करे। यह साधन मैं अबतक कर रहा हूँ। इस दासने कुल वेदान्त और ज्ञानका सार सिर्फ एक समदर्शीभावमें ही जाना है।

५-भक्तिविषयमें भजन और ज्ञानविषयमें सर्वत्र नारायण, इन्हीं दो बातोंका साधन इस जीवनमें किया है और कर रहा हूँ।

अनन्य-भक्ति गृहस्थाश्रममें अत्यन्त कठिन है, चौथी अवस्थामें त्याग करना ही पड़ेगा। अगर भगवान्‌के साथ प्रेम है और परमपद चाहते हो तो अनन्य-भक्तिका साधन करना ही होगा।

अनन्य-भक्तके लिये ही भगवान्‌ फर्माते हैं कि 'मैं उसके पीछे-पीछे इस कारणसे रहता हूँ कि भक्तके पैरोंकी धूलि मेरे मस्तकपर लगे।' अहाहा ! भगवान्‌के इस प्रेम और दयालुताको सुनकर इस दासको रोना आता है और मनमें विचार करता हूँ कि 'हे मेरे प्यारे नारायण ! मुझ पापी जीवको कब ऐसे दयालु प्रभुके चरणारविन्दमें सदा रहनेका समय आवेगा।'

### (३) दया

जैनमतमें तो 'अहिंसा परमो धर्मः' इसी एक बातका साधन कहा है। १, जीवमात्रकी रक्षा करना। २, नीचे गरदन झुकाकर चलना। ३, जहाँतक हो सके इस शरीरके कारण किसीको दुःख न होने देना। ४, किसीको भी दुखी देखकर हृदयमें दया लाना, हो सके तो किसी प्रकारकी उसे सहायता करना। ५, किसी भी जीवको जहाँतक हो सके नहीं मारना। गोस्वामीजीने कहा है- 'गुजसी आह गरीबकी कभी न खावी जाय।'

इसका साधन यह किया है कि गरीब लोग जो मजदूरी वगैरहका काम करते हैं, उनसे काम लिया जाय तो दो चार पैसे मजदूरीके ज़्यादा देना, जिससे उनका मन दुःख न पावे। और गरीब लोगोंको कभी न सताना।

यह साधन गृहस्थमें अच्छी तरह होता है।

### (४) दान

१-दान करते समय योग्य या अयोग्य पुरुषका खयाल मनमें न लाकर गृहस्थका धर्म समझकर साधु ब्राह्मण गरीब अभ्यागत अनाथको देना। विद्यादान सबसे बड़ा बतलाया गया है इसलिये विद्यालयोंमें सहायता करनी चाहिये।

२-आत्मभावसे मछली, चींटी, कुत्ते, कौवे, गौ, बन्दर, घरमें रहनेवाली चिड़ियाँ और दूसरे पक्षी या कबूतर वगैरहको अन्नदान अवश्य करना



चाहिये। इनको खिलानेसे बहुत पुण्य होता है। इस तरहका अन्नदान करनेसे इस दासको बहुत लाभ मिला है। पूरा अनुभव किया है।

नम्बर दोके अन्नदानसे भगवान्ने खुश होकर इस पापी जीवको 'समदर्शीभाव' का दान दिया है। वाह वाह! दयालु प्रभु धन्य है आपकी लीलाको और आपको!

### विविध भाँतिके निम्नलिखित साधनोंमें अनुभव

#### (१) मन

१—ध्यान करते समय मनको घुमा-घुमाकर भगवान्के दर्शन करनेमें लगाना। यह वह साधन है जो नारायणने गीतामें बतलाया है। इस साधनके करनेसे मनकी स्फुरणा कम हो जाती है, पर अधिक कालतक करनेके बाद। यह साधन बहुत अच्छा है।

२—सत्य बोलनेसे मनकी मलिनता दूर होकर मनरूपी दर्पण साफ होकर उसमें भगवान्के स्वरूपका प्रतिबिम्ब साफ पड़ने लगता है।

३—वासनारहित होना, जैसे-जैसे मनमें वासना उठती जाय, वैसे-वैसे ही उसी समय उनको काटते जाना। इसप्रकार अभ्यास करत करते वासनाएँ कम उठती हैं, तब मनकी स्फुरणाएँ कम होकर ध्यानमें बहुत मदद पहुँचाती हैं, लेकिन यह साधन बहुत कठिन है।

४—भजन करनेसे मनको शान्ति प्राप्त होती है।

५—प्रेमसे जितना मन वशमें हो जाता है, उतना किसी साधनसे नहीं होता। प्रेम बढ़ानेके लिये नारायण-रूपाकी बहुत जरूरत है। इसलिये इस दासने बहुत कालतक भगवान्से प्रेम बढ़ानेके लिये प्रार्थना की। तब प्यारे नारायणने कुछ रूपा की।

जबतक नेत्रोंसे जल-धारा न चले, प्रेम नहीं कहा जा सकता और यही एक भक्तिका खास अंग है।

#### (२) जिह्वा

यह इन्द्रिय बड़ी प्रबल है। मनके बाद दूसरा नम्बर इसीका है। इसका साधन इस तरह किया था कि, शामके वक्त बाजारमें जाना और फल मिठाई वगैरह बहुत-सी चीजें देखना, पर लेना नहीं, मन चाहे जितना भो कहे। मकानपर भी घरवाले चाहे जितनी चीजें मँगवाकर रखें, खाना ही नहीं, त्याग कर देना। मामूली साधारण सात्त्विक भोजन करना। मीठे-फोकेका कोई स्वाद जवानपर नहीं लेना। ऐसा अभ्यास करते करते जिह्वा-इन्द्रिय वशमें हो जाती है। यह साधन कठिन है, पर करनेवालेको नहीं। इस दासने गृहस्थाश्रममें ही धीरे-धीरे कर लिया था।

#### (३) समय

समयकी पाबन्दीके लिये चौबीस घण्टेका प्रोग्राम बनाकर उसके अनुसार चलना पड़ता है। मैंने किसी पुस्तकमें देखा था कि एक बड़ा अमीर अहमन्द आदमी यूरोपमें था, उसने मरते समय अपने घरवालोंको यह वसीयत की थी कि जो कुछ रुपये और इज्जत मैंने पैदा की है, वह इस कारणसे है कि मैंने अपनी जिन्दगीमें वक्तकी बहुत कद्र की है। यह शब्द मेरी कद्रपर लिख देना कि "Time is money in the world" 'दुनियाँमें समय ही सम्पत्ति है।'

जबसे यह मालूम हुआ, यह दास समयकी बहुत कद्र करता था, और अब भी बहुत कद्र करता है। वक्तकी पाबन्दी करनेसे लोक-परलोक दोनोंका काम ठीक चलता है। अपने जीवनका एक मिनट भी कभी फजूल न खोना चाहिये।

#### (४) तुलसीदासजी महाराजका एक मशहूर दोहा है—

सत्य वचन आधीनता परतिय मातुसमान ।  
इतनेमें हरि ना मिले तो तुलसीदास जमान ॥

इस दोहेका अनुभव बहुत प्रेमसे किया।

सत्यका साधन तो ऊपर लिख ही चुका हूँ।  
आधीनताका साधन यह किया कि लखनऊमें  
आठ या नौ महीने तक रहा। गोमती-किनारे जाकर  
भजन करनेके बाद घाटोंपर हिन्दू, मुसलमान जो  
कोई भी वहाँपर होते, उन सबके यह दास पैर  
छूते-छूते मकानपर वापस आता।

ईसामसीह बाइबिलमें लिखते हैं कि 'अगर कोई  
शस्त्र तुम्हारे गालपर थप्पड़ मारे तो तुम दूसरा  
गाल भी उसके सामने कर दो।' दास यह कहता है  
कि उसके सामने सिर झुकाकर प्रार्थना करो कि 'हे  
प्यारे नारायण! अपने पैरका जूता निकालकर  
इस सिरको खूब पीटो जिससे मेरा कल्याण हो  
और मैं आपको भूल न जाऊँ।'

पर-खीको आँख उठाकर नहीं देखना। मलमूत्र,  
हाड़-मांसका फोटो फौरन सामने खड़ा कर देने-  
से अभ्यास करते करते घृणा पैदा हो जाती है  
और यह पापकर्म फिर कभी नहीं होता है।

#### (५) नियम

जो काम किया जाय, नियमसे होना चाहिये।  
कुछ दिन किया, फिर छोड़ दिया इससे कुछ  
फायदा नहीं। नियमसे भजन बगैरह जो किया  
जाता है बहुत लाभदायक हुआ करता है।

#### (६) भगवदिच्छामें प्रसन्नता

'Let the will of God be done'

भगवान्की जो इच्छा है सो होने दो। भगवान्  
जो करता है सो अच्छा ही करता है। यह विचार  
करते रहनेसे गृहस्थोंकी चिन्ताएँ दूर हो जाती हैं।

#### (७) भगवान्की कृपा

तुलसीदासजी महाराजका वचन है—

जापर कृपा रामकी होई, तापर कृपा कराहि सब कोई।

इस दासको इस वचनका पूरा अनुभव हो गया।

#### (८) पुरुषार्थ

वशिष्ठजी महाराजने योगवाशिष्ठमें पुरुषार्थकी  
परम दैव लिखा है। इस दासके अनुभवमें यह  
आया है कि प्रारब्ध बिना पुरुषार्थ कुछ काम नहीं  
देता, इसका यह अर्थ नहीं है कि पुरुषार्थ छोड़  
दिया जाय, हरगिज नहीं। पुरुषार्थ तो जरूर ही  
करना चाहिये परन्तु उसका फल प्रारब्धपर छोड़े।  
यह बात सांसारिक विषयोंकी प्राप्तिके लिये है  
परमार्थमें तो भगवत्कृपासे पुरुषार्थ ही प्रधान है।

#### (९) अद्वैतभाव

जब नामरूप सब नारायणके ही हैं, तब  
भगवान्से द्वेष कैसे हो सकता है? अपना एक  
इष्टदेव मानकर अन्य देवताओंके मन्दिरोंमें जाकर  
भी प्रणाम करना चाहिये, सनातनधर्मकी मर्यादा-  
को कायम रखना चाहिये।

मुझको तो प्यारे नारायणके सिवा दूसरा  
कुछ भी नज़र नहीं आता। 'नारायण' शब्दके  
सिवा किसको बोलूँ और क्या बोलूँ?

#### (१०) उपवास

एकादशीका उपवास वैष्णव करते ही हैं परन्तु  
अमावस्या और पूर्णिमाके दिन भी बहुत पवित्र माने  
गये हैं। ये दो व्रत भी रखने चाहिये। दत्त महाराज  
ने अपने किसी ग्रन्थमें लिखा है कि धर्मादेका अन्न  
खानेसे अमावस्याके दिन एक मास और पूर्णिमाको  
पन्द्रह रोजके भजनका फल अन्न देनेवालेको  
चला जाता है, जबसे यह मालूम हुआ है यह दास  
भी दोनों दिन उपवास करता है। जो धर्मादेका  
अन्न खाते हैं उनको तो अवश्य ही करना चाहिये।

#### (११) सन्तोष

त्याग करनेसे सन्तोष हो जाता है।

#### (१२) शान्ति

ज्ञान और भजनसे शान्ति होती है।

## (१३) मानसिक पूजा

मूर्ति-पूजासे मानसिक पूजा अधिक उत्तम मानी गयी है। इस दासको यह अनुभव हुआ कि ध्यानमें सेवा करते समय मन बहुत कम भागा। चला भी जाता है तो उसे वापस आना पड़ता है, क्योंकि मनकी एकाग्रता बिना मानसिक सेवा नहीं हो सकती। दासको यह साधन बहुत पसन्द है।

## (१४) भक्ति-ज्ञानका जोड़ा

न केवल भक्तिसे ही ईश्वर-प्राप्ति होती है और न केवल ज्ञानसे ही। दोनोंका जोड़ा है। दोनों साथ चले बिना मेरे खयालसे काम नहीं चलता। जैसे कि एक टाँगसे यह शरीर नहीं चलता।

## (१५) दोषोंका दमन

काम, क्रोध, लोभ, मोहके दमनका साधन गृहस्थमें अच्छी तरह किया। गृहस्थमें इस साधनमें कोई दिक्कत नहीं होती।

## (१६) गुरु-कृपा

गुरु कृपासे ही सब साधन होते हैं और हो रहे हैं। सदा अन्तरके आत्मरूपसे अनुभव

कराते रहते हैं। इस दासके कठोर हृदयको माखन-चोरने कृपा करके माखनरूप बना दिया है।

आजकल यह दास भगवत्कृपासे तुलसीदासजी महाराजके नीचे लिखे दोहेका साधन कर रहा है और आशा करता है कि प्यारे नारायण इसको पूरा करेंगे। यह देह दयालु भगवान्के चरणारविन्द-में अर्पण हो चुकी है, दास जानकर जरूर कृपा करेंगे।

तीन टूक कौपीनके अरु भाजी बिन नौन ।

रघुबर जाके उर वसै, इन्द्र बापुरो कौन ॥

## (१७) तप करके किस वरदानकी इच्छा है

न मोक्षकी इच्छा है, न चौदह लोकके राज्यकी इच्छा है, न ज्ञान माँगता हूँ और न भक्ति माँगता हूँ। यह दास तो प्यारे नारायणके चतुर्भुजी स्वरूपका आशिक है। केवल इतना ही चाहता है।—क्या ?

‘तुम मुझे देखा करो और मैं तुम्हें देखा करूँ’

बोलो नारायण

सर्वका शुभचिन्तक—  
नारायणदास परमहंस  
स्वर्गाश्रम-ऋषिकेश

चैत्रकृष्ण १० सं० १९८६

## आह !

सूखिगो हृदय तुव दीरघ विरह माहि ,  
जरि गयो मन पाय तेरे ध्यानको अनल ।  
आसहीकी चिन्तामें चिता-सो बनिगो शरीर ,  
राजहंस ईश ! प्रान कौलौ रहिहैं अचल ॥  
भसमाहि भवन बन्यो जब अनल लागि ,  
बिफल बहाइबो है तामै अविराम जल ।  
जीवनकी जोति जब बुझि ही गई तो पुनि ,  
आयेको कहा है औ न आयेको कहा है फल ॥  
बखदेवप्रसाद मिश्र एम० ए०, एल-एल० बी०,  
एम० आर० ए० एस०

## जानने योग्य महत्त्वकी बातें

(लेखक-श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

एक सज्जनके प्रश्न हैं—( प्रश्नोंकी भाषा कुछ सुधार दी गयी है, भाव वही हैं )

- १-जीव कितनी जातिके होते हैं और जीवोंके कितने भेद होते हैं ?
- २-जीवका कर्त्ता-हर्त्ता भगवान् है या नहीं ?
- ३-जीवके कर्म साथ हैं या नहीं ?
- ४-जीव और कर्म एक ही वस्तु है या भिन्न भिन्न ?
- ५-जीवके कर्म जन्मसे साथ हैं या अनादि हैं ?
- ६-पुण्य और धर्म एक ही वस्तु हैं या दो ?
- ७-पाप और अधर्म एक ही वस्तु हैं या दो ?
- ८-धर्म हिंसा में है या अहिंसा में ?
- ९-दया कितने प्रकारकी होती है तथा कौन-सी दयाके पालनसे पुण्य होता है ?
- १०-किन लक्षणोंवाले ब्राह्मणको दान देनेसे पुण्य होता है ?
- ११-सुपात्र साधुके लक्षण क्या हैं, और उनके कैसे कर्म होते हैं ?
- १२-भगवान् किसे कहते हैं ? भगवान्के क्या लक्षण हैं ?
- १३-सुपात्र मनुष्यके क्या लक्षण हैं ?
- १४-मुक्ति-धर्म और सांसारिक धर्म एक है या दो ? मनुष्यको कौनसे धर्मका पालन करना चाहिये, जिससे मुक्तिकी प्राप्ति हो ?
- १५-स्वर्ग और देवताओंका भवन एक ही है या दो ?
- १६-किन-किन देवताओंका स्मरण करना चाहिये, जिससे जीवका निस्तार हो ?
- १७-जीव कौन-कौन-सी गतिमें जाते हैं ?
- १८-स्वर्गमें गया हुआ जीव वापस आता है या नहीं ? क्या कोई वापस आया है ?
- १९-देवताओंके भवनमें गया हुआ जीव फिर इस संसारमें जन्म ले सकता है या नहीं ?
- २०-मान लीजिये, किसी बीमार आदमीका रोग दो कबूतरोंका खून व्यवहार करनेसे दूर होता हो, इसमें कबूतर मारकर खून लगाना बतलानेवाले और मारकर खून लगानेवाले, इन दोनोंमेंसे किसको पुण्य हुआ और किसको पाप ?
- २१-एक अविवाहित मनुष्य परस्त्रीके पास जाता है, उसको परस्त्रीसे छुड़ाकर कोई उसका विवाह करा दे तो विवाह कराने और करने-वालेमेंसे कौन-सा पापका भागी हुआ और कौन-सा पुण्यका ?
- २२-गति कितने प्रकारकी होती है ?
- २३-दान देनेवाले और दान लेनेवाले इन दोनोंमें किसको पुण्य होता है और किसको पाप होता है ?

इन प्रश्नोंका क्रमसे संक्षेपमें ही उत्तर दिया जाता है। विस्तार करनेसे लेख बहुत बड़ा हो जाता।

१-आत्मरूपसे जीव एक ही है। परन्तु शरीरोंके सम्बन्धभेदसे उसकी अनन्त जातियाँ हैं। शास्त्रोंमें स्वेदज, अण्डज, उद्भिज और जरायुज भेदसे चौरासी लाख जातियाँ मानी गयी हैं।

ने कर्त्ता-हर्त्ता तो ईश्वर हैं। जीव नादि है, उसका कोई कर्त्ता नहीं। कर्म अनादि हैं और जबतक उसको हीं हो जाता, तबतक साथ रहते हैं।

और कर्म भिन्न भिन्न वस्तु हैं। जीव अनादि है। कर्म जड़ और अनित्य है।

इसका उत्तर तीसरे उत्तरमें दिया जा देखना हो तो 'कल्याण' तीसरे वर्षके अंक ६२३ में प्रकाशित 'मनुष्य कर्म' है या परतन्त्र 'कर्मका रहस्य' पढ़ने चाहिये।

और धर्म भिन्न भिन्न है। पुण्य उस है, जो धर्मका एक प्रधान अङ्ग है और लनको कहते हैं। धर्मके सम्बन्धमें हो तो गीताप्रेससे प्रकाशित 'धर्म पुस्तिका' देखनी चाहिये।

अधर्म भिन्न भिन्न है। दुष्कृत यानी पाप कहते हैं जो अधर्मका एक और कर्तव्य-विरुद्ध कर्म करने परित्याग करनेको अधर्म कहते हैं। इसमें है। परन्तु ऐसी क्रिया जो न सद्गुरु प्रतीत होती है, पर जो परिणाममें (जिसके प्रति हिंसा-उस व्यक्तिके हितके लिये अथवा कष्टों की जाती है, वह वास्तवमें

भक्तसे दया मुख्यतः एक ही प्रकारकी जीवोंका किसी प्रकारसे भी हित अभावका नाम दया है।

हो जाता और गीता-कथित ब्राह्मणके श्रेणियोंसे युक्त ब्राह्मण सब प्रकारसे। गीतामें ब्राह्मणके लक्षण यह

शमो दमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च ।

ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्मस्वभावजम् ॥

(गीता १८।४२)

'अन्तःकरणका निग्रह, इन्द्रियोंका दमन, बाहर-भीतरकी शुद्धि, धर्मके लिये कष्टसहनरूप तप, क्षमा, मन इन्द्रियाँ और शरीरकी सरलता, आस्तिक बुद्धि, शास्त्र-ज्ञान और परमात्म-तत्त्वका अनुभव ये ब्राह्मणके स्वाभाविक कर्म हैं।'

११-साधुके लक्षण और कर्म ऐसे होने चाहिये—

अमानित्वमदम्भित्वमहिंसा क्षान्तिरार्जवम् ।

आचार्योपासनं शौचं स्थैर्यमात्मविनिग्रहः ॥

इन्द्रियार्थेषु वैराग्यमनहंकार एव च ।

जन्ममृत्युजराव्याधिदुःखदोषानुदर्शनम् ॥

असक्तिरनभिष्वङ्गः पुत्रदारगृहादिषु ।

नित्यं च समचित्तत्वमिष्टानिष्टोपपत्तिषु ॥

मयि चान्ययोगेन भक्तिरव्यभिचारिणी ।

विविक्तदेशसेवित्वमरतिर्जनसंसदि ॥

श्रेष्ठताके अभिमानका अभाव, दम्भाचरणका अभाव, प्राणीमात्रको किसी प्रकार भी न सताना, क्षमाभाव, मन वाणीकी सरलता, श्रद्धा-भक्तिसहित गुरुकी सेवा, बाहर-भीतरकी शुद्धि, अन्तःकरणकी स्थिरता, मन और इन्द्रियों सहित शरीरका निग्रह, इसलोक और परलोकके सम्पूर्ण भोगोंमें आसक्तिका अभाव, अहंकारका अभाव, जन्म-मृत्यु-जरा-रोग आदिमें बारम्बार दुःख-दोषोंका विचार करना, पुत्र-स्त्री-घर और धनादिमें आसक्तिका अभाव, ममताका न होना, प्रिय-अप्रियकी प्राप्तिमें सदा ही चित्तका सम रहना अर्थात् मनके अनुकूल तथा प्रतिकूलकी प्राप्तिमें हर्ष-शोकादि विकारोंका न होना। परमेश्वरमें एकीभावसे स्थितिरूप

उ

अं

मः

नि

सः

इस

है।

भक्त

१

३

स

यो

४

सः

शी

गुल्य

अनि

ये

अद्व

(ऐसा

रहित, स्व

दयालु, मा

सुख-दुःखोंक

अर्थात् अप

वाला है। उ

लाभ-हानिमें

सहित शरीर

बढ़ निश्चयवा

ॐ केवल

आँर भावसहित

२-शरीरके कर्त्ता-हर्त्ता तो ईश्वर हैं। जीव आत्मरूपसे अनादि है, उसका कोई कर्त्ता नहीं।

३-जीवके कर्म अनादि हैं और जबतक उसको सम्यक् ज्ञान नहीं हो जाता, तबतक साथ रहते हैं।

४-जीव और कर्म भिन्न भिन्न वस्तु हैं। जीव चेतन और नित्य है। कर्म जड़ और अनित्य है।

५-इस प्रश्नका उत्तर तीसरे उत्तरमें दिया जा चुका है। विशेष देखना हो तो 'कल्याण' तीसरे वर्षके पृष्ठ ४८१ और ६२३ में प्रकाशित 'मनुष्य कर्म करनेमें स्वतन्त्र है या परतन्त्र' 'कर्मका रहस्य' शीर्षक लेख देखने चाहिये।

६-पुण्य और धर्म भिन्न भिन्न है। पुण्य उस सुकृतको कहते हैं, जो धर्मका एक प्रधान अङ्ग है और धर्म कर्तव्य-पालनको कहते हैं। धर्मके सम्बन्धमें विशेष जानना हो तो गीताप्रेससे प्रकाशित 'धर्म क्या है' नामक पुस्तिका देखनी चाहिये।

७-पाप और अधर्म भिन्न भिन्न है। दुष्कृत यानी निषिद्ध कर्मको पाप कहते हैं जो अधर्मका एक प्रधान अङ्ग है और कर्तव्य-विरुद्ध कर्म करने अथवा कर्तव्यके परित्याग करनेको अधर्म कहते हैं।

८-धर्म अहिंसामें है। परन्तु ऐसी क्रिया जो देखनेमें हिंसाके सदृश प्रतीत होती है, पर जो निःस्वार्थभावसे परिणाममें (जिसके प्रति हिंसा-सी दीखती है) उस व्यक्तिके हितके लिये अथवा लोक-हितके लिये की जाती है, वह वास्तवमें हिंसा नहीं है।

९-मेरी समझसे दया मुख्यतः एक ही प्रकारकी होती है। दुखी जीवोंका किसी प्रकारसे भी हित हो, ऐसे विशुद्ध भावका नाम दया है।

१०-शास्त्रोंके हाता और गीता-कथित ब्राह्मणके स्वाभाविक लक्षणोंसे युक्त ब्राह्मण सब प्रकारसे दानके पात्र हैं। गीतामें ब्राह्मणके लक्षण यह बतलाये हैं—

शमो दमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च ।

ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्मस्वभावजम् ॥

(गीता १८।४२)

'अन्तःकरणका निग्रह, इन्द्रियोंका दमन, बाहर-भीतरकी शुद्धि, धर्मके लिये कष्टसहनरूप तप, क्षमा, मन इन्द्रियाँ और शरीरकी सरलता, आस्तिक बुद्धि, शास्त्र-ज्ञान और परमात्म-तत्त्वका अनुभव ये ब्राह्मणके स्वाभाविक कर्म हैं।'

११-साधुके लक्षण और कर्म ऐसे होने चाहिये—

अमानित्वमदम्भित्वमहिंसा क्षान्तिरार्जवम् ।

आचार्योपासनं शौचं स्थैर्यमात्मविनिग्रहः ॥

इन्द्रियार्थेषु वैराग्यमनहंकार एव च ।

जन्ममृत्युजराध्याधिदुःखदोषानुदर्शनम् ॥

असक्तिरनभिष्वङ्गः पुत्रदारगृहादिषु ।

नित्यं च समचित्तत्वमिष्टानिष्टोपपत्तिषु ॥

मयि चानययोगेन भक्तिरव्यभिचारिणी ।

विविक्तदेशसेवित्वमरतिर्जनसंसदि ॥

श्रेष्ठताके अभिमानका अभाव, दम्भाचरणका अभाव, प्राणीमात्रको किसी प्रकार भी न सताना, क्षमाभाव, मन वाणीकी सरलता, श्रद्धा-भक्ति-सहित गुरुकी सेवा, बाहर-भीतरकी शुद्धि, अन्तःकरणकी स्थिरता, मन और इन्द्रियों सहित शरीरका निग्रह, इसलोक और परलोकके सम्पूर्ण भोगोंमें आसक्तिका अभाव, अहंकारका अभाव, जन्म-मृत्यु-जरा-रोग आदिमें बारम्बार दुःख-दोषोंका विचार करना, पुत्र-स्त्री-घर और धनादिमें आसक्तिका अभाव, ममताका न होना, प्रिय-अप्रियकी प्राप्तिमें सदा ही चित्तका सम रहना अर्थात् मनके अनुकूल तथा प्रतिकूलकी प्राप्तिमें हर्ष-शोकादि विकारोंका न होना। परमेश्वरमें एकीभावसे स्थितिरूप



ध्यानयोगके द्वारा अव्यभिचारिणी भक्ति, एकान्त और शुद्ध देशमें रहनेका स्वभाव, विषयासक्त मनुष्योंके समुदायमें प्रेम न होना, अध्यात्मज्ञानमें नित्य स्थिति और तत्त्वज्ञानके अर्थरूप परमात्माको सर्वत्र देखना ये ( बौद्ध ) ज्ञानके (साधन) हैं, जो इससे विपरीत है वही अज्ञान है, ऐसा कहा गया है। इनके अतिरिक्त भगवान् ने अपने प्यारे भक्तोंके निम्नलिखित लक्षण और कर्म बतलाये हैं—

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च ।  
निर्ममो निरहंकारः समदुःखसुखः क्षमी ॥  
सन्तुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढनिश्चयः ।  
मथ्यर्पितमनोबुद्धिर्यो मद्भक्तः स मे प्रियः ॥  
यस्माञ्चोद्विजते लोको लोकाञ्चोद्विजते च यः ।  
हर्षामर्षभयोद्वेगैर्मुक्तो यः स च मे प्रियः ॥  
अनपेक्षः शुचिर्दक्ष उदासीनो गतव्यथः ।  
सर्वारम्भपरित्यागी यो मद्भक्तः स मे प्रियः ॥  
यो न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न काङ्क्षति ।  
शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमान्यः स मे प्रियः ॥  
समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः ।  
शीतोष्णसुखदुःखेषु समः सङ्गविवर्जितः ॥  
तुल्यनिन्दास्तुतिर्मौनी सन्तुष्टो येन केनचित् ।  
अनिकेतः स्थिरमतिर्भक्तिमान्मे प्रियो नरः ॥  
ये तु धर्म्यामृतमिदं यथोक्तं पठुं पासते ।  
अध्याना मत्परमा भक्तास्तेऽतीव मे प्रियाः ॥

( १२।१२—२० )

(ऐसा जो पुरुष) सब भूतोंमें द्वेषभावसे रहित, स्वार्थरहित सबका प्रेमी, हेतुरहित व्यालु, ममतासे रहित, अहंकारादिसे रहित, सुख-दुःखोंकी प्राप्तिमें सम और क्षमावान् अर्थात् अपराध करनेवालेको भी अभय देनेवाला है। जो ध्यानयोगमें युक्त हुआ, निरन्तर लाभ-हानिमें सन्तुष्ट है तथा मन और इन्द्रियों सहित शरीरको वशमें किये हुए भुक्त (भगवान्) में दृढ़ निश्चयवाला है, वह भुक्तमें अर्पण किये हुए मन

और बुद्धिवाला मेरा भक्त भुक्तको प्रिय है। जिससे कोई भी जीव उद्वेगको प्राप्त नहीं होता और जो स्वयं भी किसी जीवसे उद्वेगको प्राप्त नहीं होता तथा जो हर्ष, ईर्ष्या, भय और उद्वेगसे रहित है, वह भक्त भुक्तको प्रिय है। जो पुरुष आकाङ्क्षासे रहित, बाहर-भीतरसे शुद्ध और चतुर है अर्थात् जिस कामके लिये आया था उसको पूरा कर चुका है एवं जो पक्षपातसे रहित और दुःखोंसे छूटा हुआ है वह सर्व आरम्भोंका त्यागी अर्थात् मन, वाणी, शरीरद्वारा प्रारब्धसे होनेवाले सम्पूर्ण स्वाभाविक कर्मोंमें कर्त्तापनके अभिमानका त्यागी, मेरा भक्त भुक्तको प्रिय है। जो न कभी हर्षित होता है, न द्वेष करता है, न शोक करता है, न कामना करता है तथा जो शुभ और अशुभ सम्पूर्ण कर्मोंके फलका त्यागी है वह भक्तियुक्त पुरुष भुक्तको प्रिय है। जो शत्रु-मित्र और मान-अपमानमें सम है तथा जो सद्दीन-गर्मी और सुख-दुःखादि द्वन्द्वोंमें सम है और सब संसारमें आसक्तिसे रहित है, जो निन्दा-स्तुति-को समान समझनेवाला और मननशील है, जो जिस किसी प्रकारसे भी शरीरका निर्वाह होनेमें सदा ही सन्तुष्ट है, अपने रहनेके स्थानमें ममतासे रहित है, वह स्थिर-बुद्धिवाला भक्तिमान् पुरुष भुक्तको प्रिय है। जो मेरे (भगवान्)के परायण हुए श्रद्धायुक्त पुरुष इस उपर्युक्त धर्ममय अमृतकी निष्कामभावसे सेवन करते हैं वे भक्त भुक्तको (भगवान्) अतिशय प्रिय हैं।

ऐसे भगवान् के प्यारे पुरुष ही वास्तवमें सर्वथा सुपात्र साधु हैं।

१२-भगवान् वास्तवमें अनिर्वचनीय हैं, जिसको भगवान् के स्वरूपका तत्त्वसे ज्ञान है, वही उनको जानता है परन्तु वह भी वाणीसे उनका वर्णन नहीं कर सकता। भगवान् के सम्बन्धमें विस्तारसे जानना हो तो गीताप्रेससे प्रकाशित 'भगवान् क्या

ॐ केवल एक सर्वशक्तिमान् परमेश्वरको ही अपना स्वामी मानते हुए स्वार्थ और अभिमानका त्याग करके श्रद्धा और भावसहित परमप्रेमसे भगवान् का निरन्तर चिन्तन करना अव्यभिचारिणी भक्ति है।

हैं ?' नामक पुस्तकको ध्यानपूर्वक पढ़ना चाहिये।

१३-सुपात्र मनुष्य वही है, जिसमें दैवी-सम्पदा-के गुण विकसित हों। दैवी-सम्पत्तिके गुणोंके विषयमें भगवान्ने कहा है—

अभयं सत्त्वसंशुद्धिर्ज्ञानयोगव्यवस्थितिः ।  
दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम् ॥  
अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्यागः शान्तिरपैशुनम् ।  
दया भूतेष्वलोलुप्त्वं मार्दवं हीरचापलम् ॥  
तेजः क्षमा धृतिः शौचमद्रोहो नातिमानिता ।  
भवन्ति सम्पदं दैवीमभिजातस्य भारत ॥

(१६।१-३)

हे अजुन ! सर्वथा भयका अभाव, अन्तःकरण-की अच्छी प्रकारसे स्वच्छता, तत्त्वज्ञानके लिये ध्यानयोगमें निरन्तर दृढ़ स्थिति, सात्त्विक दान, इन्द्रियोंका दमन, भगवत्पूजा और अग्निहोत्रादि उत्तम कर्मोंका आचरण, वेद-शास्त्रोंके पठनपाठन-पूर्वक भगवत्के नाम और गुणोंका कीर्तन, स्वधर्म-पालनके लिये कष्ट-सहन, शरीर और इन्द्रियोंसहित अन्तःकरणकी सरलता, मन वाणी और शरीरसे किसी प्रकार भी किसीको कष्ट नहीं देना, सबसे यथार्थ और प्रियभाषण, अपना अपकार करनेवालेपर भी क्रोध न होना, कर्मोंमें कर्त्तापनके अभिमानका त्याग, अन्तःकरणकी उपरामता अर्थात् चित्तकी चञ्चलताका अभाव, किसीकी भी निन्दा आदि न करना, सब भूतप्राणियोंमें हेतुरहित दया, इन्द्रियोंका विषयोंके साथ संयोग होनेपर भी आसक्तिका न होना, कोमलता, लोक और शास्त्रसे विरुद्ध आचरण करनेमें लज्जा, व्यर्थ चेष्टाओंका अभाव, तेज, क्षमा, धैर्य, बाहर-भीतरकी शुद्धि, किसीमें भी शत्रुभावका न होना और अपनेमें पूज्यताके अभिमानका अभाव। दैवीसम्पदाको प्राप्त हुए पुरुषके ये (२६) लक्षण हैं।

१४-क्रियाके स्वरूपसे अलग अलग हैं। सांसारिक धर्म भी निष्कामभावसे किया जाय तो वह भी मुक्तिदायक हो सकता है। मुक्तिधर्म तो मुक्तिदायक है ही। वर्णभेदके अनुसार सांसारिक धर्मका स्वरूप

और निष्काम भावसे भगवत्पूजाके रूपमें किये जानेपर परमसिद्धिरूप परमात्माकी प्राप्तिका विवेचन गीता १८ वें अध्यायके श्लोक ४१ से ४६ तक और मुक्तिधर्म यानी ज्ञाननिष्ठाका स्वरूप १८ वें अध्यायके श्लोक ४६ से ५५ तक देखना चाहिये।

१५-एक ही है, देवताओंके भिन्न भिन्न लोकोंको ही स्वर्ग कहते हैं।

१६-परमदयालु, परम सुदृढ़, परमप्रेमी, परम-उदार, विज्ञानानन्दमय, नित्य, चेतन, अनन्त, शान्त, सर्वशक्तिमान् सृष्टिकर्त्ता परमात्मदेव एक ही है। उसीको लोग ब्रह्म, विष्णु, शिव, ब्रह्मा, सूर्य, शक्ति, गणेश, अरिहन्त, बुद्ध, अल्लाह, जिहोबा, गाड आदि अनेक नामोंसे पुकारते हैं। इस भावनासे ऐसे परमात्माके किसी भी नाम-रूपका स्मरण-पूजन करनेसे जीवका निस्तार हो सकता है।

१७-नीच कर्म करनेवाले तामसी पापी जीव नरकोंमें जाते हैं। नारकीय गतिके दो भेद हैं—स्थानविशेष और योनिविशेष। रौरव, महारौरव, कुम्भीपाक आदि नरकोंमें यमराजके द्वारा जो यातना मिलती है वह स्थानविशेषकी गति है और देव, पितर, मनुष्यके अतिरिक्त पशु, पक्षी, कीट, पतंग आदिमें जन्म लेना योनिविशेषकी गति मानी जाती है। राजसी कर्म करनेवाले मनुष्य-योनिको प्राप्त होते हैं और सात्त्विक पुरुष ऊँची गति—देवयोनिमें जाते हैं।—

गीतामें भगवान् कहते हैं—

ऊर्ध्वं गच्छन्ति सत्त्वस्था मध्ये तिष्ठन्ति राजसाः ।

जघन्यगुणवृत्तिस्था अधो गच्छन्ति तामसाः ॥

(गीता १४।१८)

'सत्त्वगुणमें स्थित हुए पुरुष स्वर्गादि उच्च लोकोंको जाते हैं, रजोगुणमें स्थित राजस पुरुष मध्यमें अर्थात् मनुष्यलोकमें ही रहते हैं एवं तमोगुणके कार्यरूप निद्रा, प्रमाद और आलस्यादि-में स्थित हुए तामस मनुष्य अधोगतिको अर्थात् कीट, पशु आदि नीच योनियोंको प्राप्त होते हैं।

१८-मुक्त होनेपर जीव वापस नहीं आते। स्वर्गमें

गये हुए जीव वापस आते हैं। गीतामें कहा है— 'तीनों वेदोंमें विधान किये हुए सकाम कर्म करने-वाले, सोमरसका पान करनेवाले, स्वर्ग-प्राप्तिके प्रतिबन्धक देव-ऋणरूप पापसे मुक्त हुए पुरुष मुक्त (भगवान्) को यज्ञोंद्वारा पूजकर स्वर्गकी प्राप्ति चाहते हैं, वे पुरुष अपने पुण्योंके फलरूप इन्द्र-लोकको प्राप्त होकर स्वर्गमें दिव्य देवताओंके भोगोंको भोगते हैं, और वे उस विशाल स्वर्गलोकको भोगकर पुण्य क्षीण होनेपर मृत्युलोकको प्राप्त होते हैं। इसप्रकार स्वर्गके साधनरूप तीनों वेदोंमें कहे हुए सकाम कर्मके शरण हुए भोगोंकी कामनावाले पुरुष बारम्बार जाने आनेमें ही लगे रहते हैं। (गीता ६। २०-२१) इससे वापस आना सिद्ध है। प्राचीनकालमें महाराजा त्रिशंकु, ययाति, नहुष आदि अनेक वापस आये हैं।

१६-निष्कामसाधक जो अर्विमार्गसे ब्रह्मलोकमें जाते हैं, वापस नहीं आते। वे क्रममुक्तिके द्वारा परमात्माके परमधाममें जा पहुँचते हैं। परन्तु धूम-मार्गसे जानेवाले सकामी वापस आते हैं। (गीता अध्याय ८ श्लोक २४ से २६ देखना चाहिये) 'छान्दोग्य और बृहदारण्यक उपनिषद्में भी इसका विस्तारसे वर्णन है। विशेषरूपसे यह विषय समझना हो तो 'जीव सम्बन्धी प्रश्नोत्तर' शीर्षक लेख 'कल्याण' तृतीय वर्षकी ८वीं संख्यामें देखनी चाहिये।

२०-बीमारी आदिके लिये किसी भी जीवकी हिसा करनेवाले, बतलानेवाले, और हिसासे मिली हुई वस्तु काममें लानेवाले तीनों ही आसक्ति और स्वार्थ होनेके कारण पापके भागी होते हैं।

२१-योग्य शास्त्रानुकूल विवाह हो और विवाह-के पश्चात् स्त्री-पुरुष न्याययुक्त गृहस्थाश्रमका पालन करें तो विवाह करने करानेवाले दोनों ही पुण्यके भागी होते हैं।

२२-गति अर्थात् मुक्ति दो प्रकारकी होती है। शरीर रहते भी सम्यक् ज्ञान प्राप्त होनेपर जीवन मुक्ति हो सकती है जीता हुआ ही पुरुष मुक्त हो

जाता है। इसीलिये उसको जीवन्मुक्त कहते हैं। मुक्त होनेपर भी उसके शरीरका कार्य चलता रहता है। ऐसे जीवन्मुक्तकी स्थिति बतलाते हुए भगवान् कहते हैं—'हे अर्जुन ! जो पुरुष सत्त्वगुणके कार्य-रूप प्रकाशको और रजोगुणके कार्यरूप प्रवृत्तिको तथा तमोगुणके कार्यरूप मोहको भी न तो प्रवृत्त होनेपर बुरा समझता है और न निवृत्त होनेपर उनकी आकांक्षा ही करता है। जो साक्षीके सदृश स्थित हुआ गुणोंके द्वारा विचलित नहीं किया जा सकता और गुण ही गुणोंमें बर्तते हैं ऐसा समझता हुआ सच्चिदानन्दधन परमात्मामें एकी-भावसे स्थित रहता है। उस स्थितिसे कभी चलायमान नहीं होता और जो निरन्तर आत्म-भावमें स्थित हुआ दुःख-सुखको समान समझने-वाला है तथा मिट्टी, पत्थर और सुवर्णमें समान-भाववाला और धैर्यवान् है तथा जो प्रिय-अप्रिय-को बराबर समझता है, अपनी निन्दा-स्तुतिमें भी समानभाववाला है, मान-अपमानमें सम है, मित्र और वैरीके पक्षमें भी सम है वह सम्पूर्ण आरम्भोंमें कर्तापनके अभिमानसे रहित हुआ पुरुष गुणातीत कहा जाता है। (गीता १४। २२-२५) यह गुणातीत ही जीवन्मुक्त है। दूसरी विदेहमुक्ति मरणके अनन्तर होती है। अत्यन्त ऊँची स्थितिमें मरनेवालेकी यही गति होती है। गीतामें कहा है— 'अन्तकालमें भी इस निष्ठामें स्थित होकर ब्रह्मानन्दको प्राप्त हो जाता है।

'स्थित्वास्यामन्तकालेऽपि ब्रह्मनिर्वाणमृच्छति।'

(२। ७२)

२३-आसक्ति और स्वार्थको त्यागकर सत्पात्र-में जो दान दिया लिया जाता है उसमें देने और लेनेवाले दोनोंको ही परम धर्म-लाभ होता है। स्वार्थबुद्धिसे लेनेवाले सुपात्रका पुण्य क्षय होता है और कुपात्रको नरककी प्राप्ति होती है। इसी-प्रकार स्वार्थबुद्धिसे सुपात्रके प्रति दान देनेवालेको पुण्य और कुपात्रके प्रति देनेवालेको पाप होता है।



(लेखक-पं० श्रीबलदेवप्रसादजी मिश्र, एम० ए०, एब-एब० बी०)

आमयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया ।

१ सर्वभूतानि—यह क्या ? क्या भगवान् ने भी पुनरुक्ति दोष कर दिया और ऊपरकी पंक्तिमें 'सर्वभूत' कहकर फिर भी 'सर्वभूत' शब्दको ज्यों-का-त्यों दुहरा दिया ? क्या वे 'तानि सर्वाणि' अथवा इसी तरहका और कोई शब्द नहीं कह सकते थे ?

क्यों नहीं ? वे अवश्य कह सकते थे; परन्तु वैसा कह देनेपर ऐसा चमत्कार कैसे आता ? पहली पंक्तिमें तो 'सर्वभूत' से 'पञ्चमहाभूत' तथा 'प्राणी' दोनों अर्थ अभीष्ट हैं। दूसरी पंक्तिमें केवल कर्मका हाल और कर्मका सम्बन्ध, विशेषकर प्राणियों और मनुष्य-जातिसे है। इसलिये इस पंक्तिमें इसी विशिष्ट अर्थका बोध करानेके लिये इस शब्दको दुहराना पड़ा है। यों तो क्षिति, जल, नभ, पावक, पवन भी यन्त्रारूढ़-से होकर चक्र लगा रहे हैं परन्तु इस कर्मचक्रका जितना सम्बन्ध मानव-समाजसे है उतनेका ही विशेष वर्णन गीतामें किया गया है और इसलिये यहाँ 'सर्वभूत' का अर्थ 'सर्वमनुष्य' ही विशेषरूपसे मानना पड़ेगा।

२ यन्त्रारूढानि—भगवान् ने 'लोकोऽयं कर्मबन्धनः' कहकर यह बताया है कि सम्पूर्ण विश्व कर्मबन्धनसे बँधा हुआ है। यह बन्धन बड़ा प्रबल है। कर्मके बिना कोई क्षणभर भी रह नहीं सकता।

न हि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत् ।

कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः ॥

यहाँ तक कि यदि अर्जुनके समान विकट वीर भी चाहे कि मैं कर्म न करूँ तो वह भी असम्भव ही होगा।

स्वभावजेन कौन्तेय ! निबद्धः स्वेन कमणा ।

कर्तुं नेच्छसि यन्मोहात्कर्ष्यस्यवशोऽपि तत् ॥

मिथैष व्यवसायस्ते प्रकृतिस्त्वां नियोक्ष्यति ॥

यह तो हुई कर्मपरवशता। अब एक बात और है जिसे कह सकते हैं कर्मविपाक। मनुष्य जो कुछ करता है उसका फल उसे भोगना ही पड़ता है।

'नेकीका बदला नेक है बदका बदीके साथ है' यदि कोई अच्छा काम करेगा तो उसे अच्छा फल भोगना ही होगा और यदि बुरा कर्म करेगा तो बुरा फल भोगेगा। बबूलका पेड़ बोकर कोई आमका फल पानेकी आशा नहीं रख सकता।

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम् ।

इसीका नाम है कर्मविपाक।

अब मशीनमें—यन्त्रमें—क्या होता है ? परवशता और परिणाम-सम्बद्धता। यन्त्रके कार्य परवश हुआ करते हैं और उनका परिणाम निश्चित तथा अवश्यम्भावी रहता है। मिलकी मशीन चली कि रईका सूत बनना और सूतसे कपड़ा बनना शुरू हुआ। यह परिणाम निश्चित और अवश्यम्भावी है। इसी तरह कर्म-चक्रपर आरूढ़ रहनेवाला रई-रूपी मनुष्य अपने अपने कर्मरूपी कल-पुर्जोंपर उठता गिरता दबता और बढ़ता रहता है और इसीके अनुसार वह अवश्यम्भावी परिणाममयी दशाओंको प्राप्त होता रहता है।

यही कर्मपरवशता और परिणाम-सम्बद्धता-का भाव व्यक्त करनेके लिये 'यन्त्रारूढ़' शब्द कहा

गया है। यह बात 'विश्वशानीह' आदि कह देनेसे कैसे प्रकट हो सकती!

३ आमयन्—कर्मका यन्त्र ऐसा वैसा नहीं है। वह एकदम चक्र है जिसपर चढ़ा हुआ जीव सुख दुःखके और स्वर्ग नरकके चक्र लगाया करता है। जो 'ईश्वरोऽहमहंभोगी सिद्धोऽहं बलवान् सुखी' आदिकी भावनाएँ रखकर आसुरी सम्पत्तिवाला होता है उसे भगवान् नरक तथा नीच योनियोंका चक्र खिलाया करते हैं। जो दैवी सम्पत्तिवाले, सत्कर्मनिष्ठ और कल्याणकृत् रहते हैं वे शुभयोनियों और स्वर्गलोकोंका चक्र लगाया करते हैं।

क्या यह भ्रमण—यह चक्र—सब जीवोंके लिये अनिवार्य है? इसका उत्तर जाननेके लिये इसी 'आमयन्' शब्दपर, पुनर्वार विचार कीजिये। क्या इस शब्दसे 'भ्रान्ति' की भावना भी नहीं निकल रही है? तब—इसका तात्पर्य यही हुआ कि जो भ्रममें पड़ा वही घूमा और जिसने गलती नहीं की वही स्थिर रहा। गलती किस तरह होती है? अपनेको 'भ्रामयिता' समझ लेनेसे। यदि मिलकी एक बाबिन कहे कि मैं ही सूतको लपेट रही हूँ और करघा कहे कि मैं ही कपड़ा बुन रहा हूँ तो यह उनकी भूल ही तो है। बाबिन और करघे तो केवल उस मिल-सञ्चालकके इशारेसे घूम रहे हैं। वही तो वास्तवमें कर्त्ता-भोक्ता आदि है। यन्त्रारूढ़ सर्वभूत तो केवल निमित्तमात्र हैं। अपनेको ही कर्त्ता और फलभोक्ता मान लेना ही तो प्रबल भ्रम है जिसके कारण मनुष्य संसृति-चक्रमें भ्रमण किया करता है।

पाठक! अब आप समझ गये होंगे कि भगवान्ने 'शासयन्' आदि न कहकर 'आमयन्' शब्दका व्यवहार क्यों किया है?

४ मायया—जीवोंको भ्रमानेवाला कौन है? वह है भगवान्की मायाशक्ति। हम लोग किस तरह भ्रम रहे हैं यह जाननेके लिये हमें इसी

शक्तिका रहस्य अच्छी तरह समझ लेना चाहिये। ज्ञानके ऊपर अज्ञानका परदा डाल देना, एक वस्तुमें अनेकत्वकी कल्पना उत्पन्न करा देना आदि इसी शक्तिके अनोखे काम हैं। इसी शक्तिके कारण मनुष्य 'मैं-पन' के भ्रममें पड़कर संस्पर्शज भोगोंको—रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और शब्दकी सुन्दरताओंको—सद्यः सुखदायक देखता है और इसलिये उन्हींकी प्राप्तिमें दत्तचित्त होकर उल्टे कर्म करने लग जाता और इच्छा न रहने-पर भी दुःख उठाया करता है। जो लोग दुनियाके सुखोंमें मोहित न होकर सत्कर्ममें ही प्रवृत्ति रखना करते हैं उनमें यदि 'मैं-पन' रहा तो वे भी स्वर्ग-सुख भोगकर पुण्य क्षीण होनेपर फिर यहाँ आ जाते हैं। इस तरह कोई आसुर-चक्रमें घूमा करता है तो कोई यज्ञचक्रमें!

यह माया त्रिगुणमयी है। इसके तीनों गुणों—सत्, रज, तम—के लक्षण क्या हैं, वे किस तरह प्रकट होते, कैसे बढ़ते, किस तरह परिणाम उत्पन्न करते और किस प्रकार जीवको शरीरसे बाँधा करते हैं ये सब बातें गीतामें विस्तारपूर्वक बतलायी गयी हैं, इन्हें ही अच्छी तरह समझ लेनेपर मनुष्य अपने भ्रमणका रहस्य भली-भाँति समझ सकता है। कर्त्ता, बुद्धि, धृति, सुख, स्वजातीय कर्म और यद्वाँतक कि आहार आदिके भी सार्वत्रिक, राजस और तामस-भेदोंको गीतामें स्पष्टरूपसे बता दिया गया है। सर्वसाधारणको चाहिये कि इस विषयको अच्छी तरह समझ लें क्योंकि इसे समझनेसे ही वे सुविधापूर्वक अपना विकास कर सकते हैं।

जीव तो अविनाशी ईश्वरांश है। इसलिये ईश्वरके समान ही 'तिष्ठति' की इच्छा रखना—आवागमनसे मोक्ष पानेका विचार रखना—उसके लिये स्वाभाविक है और अनिवार्य है। जहाँ आर्प ग्रन्थोंमें यज्ञचक्र और धूमयानका वर्णन है वहाँ

अर्चियानका भी तो है। जहाँ यह देखा जाता है कि अनेक जीव भ्रमित हो रहे हैं वहाँ यह भी तो देखा जाता है कि जनक आदि संसिद्धि भी प्राप्त कर चुके हैं। जहाँ स्वर्ग-नरकसे पुनरावर्तन होता है वहाँ भगवत्धामके विषयमें यह भी तो कहा है कि—

यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम।

भ्रमणसे मुक्ति पानेका उपाय क्या है? इस प्रश्नका उत्तर सीधा है। रोगको भलीभाँति दूर करनेके लिये रोगके कारणको दूर करना पड़ता है। इसी तरह भ्रमणको दूर करनेके लिये भ्रमणके कारणको हटाना होगा। यह कारण है माया। इसलिये जिन उपायोंसे मायापर विजय प्राप्त की जा सकती है, उन्हीं उपायोंसे भ्रमण भी दूर हो सकेगा। मायापर विजय प्राप्त करनेके दो उपाय गीतामें बताये गये हैं। पहला उपाय है आसक्तिहीन बुद्धि और दूसरा उपाय है भगवद्-भक्ति।

अश्वत्थमेनं सुविरूढमूल-

मसङ्गश्लेष्णे दृढेन छित्त्वा ।

ततः परं तत्परिमार्गितव्यं

यस्मिन्गता न निवर्तन्ति भूयः ॥

तथा—

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया ।

मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते ॥

आदि श्लोकोंमें यही दो उपाय बताये गये हैं। कर्मयोगीके लिये स्थितधी (स्थिर बुद्धिवाला) अथवा परम भागवत (श्रेष्ठ भगवद्भक्त) होना आवश्यक है। यदि ये बातें नहीं हैं तो कर्ममार्ग अधूरा है और ऐसे अधूरे मार्गपर चलनेसे मनुष्य भ्रमणके बन्धनसे नहीं छूट सकता। यही भाव प्रकट करनेके लिये 'आमयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया' की क्रिया अधूरी रक्खी गई है और वह पूरा वाक्य (Complete sentence) नहीं होने पाया है। तथा इसी कारण उसे ज्ञान और भक्तिके दो

स्वतन्त्र वाक्योंके बीचमें लाकर रक्खा गया है। इन दो उपायोंमें भी भक्तिकी महिमा विशेष है इसीलिये ज्ञानके वाक्यको केवल सङ्केतात्मक रखकर भक्तिके वाक्यको आदेशात्मक रक्खा गया है और 'शरणं गच्छ' कहकर स्पष्ट आदेश दिया गया है कि 'भक्ति करो'।

जिस तरह ईश्वर स्थिर है और उसकी माया-शक्तिके द्वारा जगत्का कार्य होता रहता है उसी तरह वास्तविक कर्मयोगी भी आत्मभावमें सदैव स्थिर रहता है और उसके शरीरद्वारा जगत्का कार्य होता रहता है।

‘शारीरं केवलं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्बिषम्’ ।’

वह तो यही समझता है कि प्रकृतिकी प्रेरणासे कार्य होते हैं। परमात्मा ही उनका सञ्चालक है और वही फल-भोक्ता है। उसका 'मैं-पन' एकदम दूर हो जाता है और इसीलिये वह मुक्त भी हो जाता है। इन्हीं सब भावोंको व्यक्त करनेके लिये इस पंक्तिमें 'माया' शब्दका व्यवहार किया गया है।

एक बात और कहकर यह प्रकरण समाप्त किया जायगा। यदि मनुष्य यन्त्रारूढ़ होकर घूम रहे हैं तो फिर उनमें स्वतःप्रयत्न अथवा क्रिया-स्वातन्त्र्य (Free will) कहाँ तक रह सकता है? जब यह निश्चित है कि सब कुछ 'कर्ता भोक्ता महेश्वरः' ही है तब फिर मनुष्यका पुरुषार्थ किस बातमें है? इसका उत्तर यही है कि उसका पुरुषार्थ, उसका बुद्धि-स्वातन्त्र्य अथवा उसका स्वतः प्रयत्न केवल इस वास्तविक सत्यको भलीभाँति अनुभव कर लेनेमें ही है। जीव अविनाशी ईश्वर-अंश है इसलिये यह अनुभव प्राप्त करना उसका जन्मसिद्ध अधिकार है। इस अधिकारके कारण इसी दशामें वह जितने प्रयत्न करना चाहे, सब कर सकता है। उन सभीके लिये वह स्वतन्त्र है। रही सामान्य विकासकी बात, सो जिसे इस ईश्वरीय मायाके



इस भ्रमणका कुछ रहस्य विदित है वह जानता है कि विधिने सृष्टि-रचनाके साथ ही साथ सत्कर्म-प्रवर्तन ( यज्ञ-चक्र-प्रवर्तन ) भी रच रक्खा है और उसने मनुष्योंमें ऐसी प्रवृत्ति बना दी है कि वे श्रेष्ठों-का अनुकरण करें तथा सत्सङ्गति और स्वाध्यायसे लाभ उठावें। जब मनुष्योंके असामान्य अधर्माचरणसे इस नियममें बाधा आने लगती है तब ईश्वर मनुष्य-अवतारमें अपनी दैवी कला प्रकट करके सत्कर्मोंकी फिरसे व्यवस्था कर देते हैं और सामान्य जीवोंके लिये ऐसा आदर्श आचरण दिखला देते हैं कि जिसके कारण वे उन्हींके रास्तेपर चलते हुए अपना विकास किया करते हैं और किसी-न-किसी समय मोक्षके लिये प्रयत्नवान् भी हो जाया करते हैं। मायाका यह भ्रमण केवल हासमय ही नहीं है। विकासमय भी है। उसका अधोगमन ही नहीं है, ऊर्ध्वगमन भी है। तभी तो पूरा भ्रमण होता है। नहीं तों वह अधूरा ही न रह जाता! मनुष्य जितना चाहे उतना बँध सकता है और जितना चाहे उतना छूट सकता है। वह चेतन पदार्थ है, जड़ नहीं। ईश्वरांश है, मायांश नहीं। इसलिये वह अपनेको यन्त्रारूढ़ न मानकर स्वतन्त्र चेष्टा (Free Will) वाला समझा करता है। इसी समझके कारण यदि वह इन्द्रियोंका अनुयायी बना तो हासके चक्रमें पड़ता है और यदि बुद्धिका अनुयायी बना तो विकासके पथपर चलता है। भगवान्ने जहाँ 'कर्ता भोक्ता महेस्वरः' आदि कहा है वहाँ 'उद्धरेदात्मनात्मानं' की बात भी तो कह दी है और यह भी तो कह दिया है कि—

नादत्ते कस्यचित्पापं न चैव सुकृतं विभुः ।

अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेन मुह्यन्ति जन्तवः ॥

इतना सब कहनेका तात्पर्य यह है कि जितने जीव अहं (मैं-पन) के यन्त्रपर आरूढ़ हैं, उतने सब मायाके द्वारा भ्रमण किया करते हैं। यदि इस 'मैं-पन' का रुख विषय-सुखोंकी ओर रहा तो भ्रमण अधोगामी होगा और यदि सद्भावोंकी ओर रहा तो

भ्रमण ऊर्ध्वगामी होगा। जो इस 'मैं-पन' के यन्त्रसे ही अलग हो गया उसे माया किस तरह भ्रमा सकती है? जो इस यन्त्रसे अलग होना चाहते हैं वे या तो अपना वास्तविक आत्मतत्त्व पहचानें और इस तरह अहंभावको अपनेसे अलग करें या अहंभावकी जननी मायाके पति परम पिता परमात्माकी शरण जावें। जिनसे यह नहीं हो सकता उन्हें चाहिये कि वे अपने 'मैं-पन' के यन्त्रका रुख सदा सद्भावोंकी ओर ही रखें, जिससे उनका अधोगमन न होकर ऊर्ध्वगमन ही होता रहे। यदि उनका ईश्वरांश 'मैं-पनके' घेरेमें पड़ कर इतना क्षीण हो गया है कि वे मशीनपर अपना निजी प्रभाव प्रकट ही नहीं कर सकते तो फिर उन्हें उस जगत्-यन्त्रके सूत्रधारकी ही शरण जाना चाहिये, और इस तरह करने पर जब वह प्रसन्न हो जायगा तो आप ही वह इस मैं-पनके पुर्जेका रुख सद्भावकी ओर कर देगा। यही गीताकथित कर्मयोगका रहस्य है और यही बात उपर्युक्त श्लोकाद्ध—इस पंक्तिमें—कही गयी है।

अविरोध—कई मनुष्य ऐसे हैं जो कहते हैं कि कर्म करते ही रहना चाहिये। कई ऐसे हैं जो कहते हैं कि कर्म बिल्कुल न करना चाहिये क्योंकि कर्म-मात्र ही दूषित होते हैं। कई लोकसंग्रहके कर्माहीमें इति-कर्तव्यता देखते हैं। कई पारलौकिक कर्माहीको सब कुछ समझते हैं। कुछ लोग आचारकी कर्मनिष्ठताको सच्चा धर्म समझते हैं और कुछ लोग विचारकी कर्मनिष्ठताको ही धर्म मानते हैं। कई लोग कर्मकाण्ड—वैदिक-विधि-विधानहीको सब कुछ समझते हैं। कुछ लोग बाह्य आडम्बरोंको छोड़ श्रद्धा पर ही पूरा जोर देते हैं। परन्तु गीताकथित कर्मयोगने इन सभी सिद्धान्तोंको अपना लिया है और इस तरह वह सबके लिये समानरूपसे रोचक होते हुए भी सबसे श्रेष्ठ बन गया है। कर्म करना तो स्वाभाविक है और जबतक जीवन है तबतक



**COLLECTION OF VARIOUS**  
**-> HINDUISM SCRIPTURES**  
**-> HINDU COMICS**  
**-> AYURVEDA**  
**-> MAGZINES**

**FIND ALL AT [HTTPS://DSC.GG/DHARMA](https://dsc.gg/dharma)**

**Made with**



**By**

**Avinash/Shashi**

**Icreator of  
hinduism  
server!**

**KAPWING**

कर्म है। फिर कर्म करते ही रहनेका अथवा कर्मके सर्वथा परित्यागहीका दुराग्रह क्यों होना चाहिये। मनसे (आत्माकी ओरसे) निष्क्रियता रहे और यदि शरीरके द्वारा कर्म होते हैं तो होने दिया जाय। काम्य कर्मोंका संन्यास ही सच्चा संन्यास है। निष्कामकर्म तो सिद्धावस्थामें स्वाभाविक ही होते रहेंगे। यही गीताका मुख्य सिद्धान्त है। इसीप्रकार शास्त्रकी व्यवस्थाको मानते हुए भी श्रद्धापर पूरा जोर दिया गया है और 'ओं तत्सत्' का निर्देश करते हुए द्रव्यमय यज्ञसे (वाह्य आडम्बरसे) ज्ञानयज्ञको श्रेष्ठ कहा गया है।

अपूर्वता—कर्ममार्गके अनेकानेक विरोधोंको दूर करके उनका समन्वय कर देना, और इतना ही नहीं, बल्कि कर्म-संन्यास और कर्म-योगके विरोधको भी दूर करके उनको एक सिद्ध कर देना ही गीताकी बड़ी भारी अपूर्वता है। त्रैगुण्यका मार्ग

तो सबने बताया परन्तु निस्त्रैगुण्यका मार्ग—आसक्तिरहित होकर कर्म करते रहनेका मार्ग इस खूबीके साथ और कहीं शायद ही कहा गया हो। कर्मोंकी सुचारु स्थापनाहीके लिये भगवान् अवतार धारण करते हैं और कर्म करते हुए भी—संसारमें व्यवहार करते हुए भी—संसिद्धि प्राप्त करनेका मार्ग भी दिखा देते हैं। यह जरूरी नहीं है कि लँगोटी लगा करके ही, धूनी रमा करके ही, परमपद प्राप्त किया जाय। जगत्का व्यवहार करते हुए भी मनुष्य परमपद प्राप्त कर सकता है। कर्मोंको करते हुए भी मनुष्य उनके दोषोंसे बच सकता है। यज्ञ, दान, तप इत्यादि करता हुआ वह स्वतः भी सिद्धावस्था प्राप्त कर सकता है और साथ ही दूसरोंको भी लाभ पहुँचा सकता है। यही गीताकथित कर्मयोगकी अपूर्वता है।

\*\*\*\*\*